आजादी की लड़ाई में संथालों की भूमिका

डॉ. सी. पी. गुप्ता, सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हरदा–461331, मध्यप्रदेश
मोबाइल न. 7974824118 Email-chandrapal.gupta@yahoo.com
डॉ.धर्मेंद्र कोरी, प्राध्यापक (हिंदी) स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हरदा–461331, मध्यप्रदेश मोबाइल न. 9340402100

वास्तव में ना केवल मनुष्य बल्कि संसार के सभी जीव–जगत और वनस्पतियों को भी आजादी पसंद होती है। आजादी के बिना कोई भी मनुष्य या जीव–जगत अपने जीवन का सर्वांगीण और सतत विकास नहीं कर सकता। इसके साथ ही दूसरा सच यह भी है कि मनुष्य स्वभाव से ही वर्चस्ववादी और शोषणकारी होता है, जिसके लिए वह सतत नीतियां, षड्यंत्र और रणनीतियां भी बनाता रहता है। प्लासी युद्ध के 100 वर्षो के अंदर ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य तथा उसके द्वारा प्रयोगात्मक विधि के क्रियान्वयन से समाज के विभिन्न वर्गों, समुदायों तथा क्षेत्रों में असंतोष के स्वर आंदोलन, विद्रोह और सैनिक विप्लव के रूप में प्रस्फुटित होते रहे हैं। इन विद्रोहों के पीछे अन्य अनेक कारण भी अंतर्निहित थे जैसे कि भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में हस्तक्षेप, नवीन प्रशासनिक नीतियां, करारोपण, स्थानीय अर्थव्यवस्था का ध्वस्त होना, भारत में औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार स्थाई समाज और भू–राजस्व प्राप्त करने के उद्देश्य से जंगलों को काट कर कृषि भूमि का विस्तार कर रही थी। अंग्रेजों का साथ देकर स्थानीय जमींदारों ने जंगली भूमि को कृषि भूमि में बदलकर धान की खेती करवाना प्रारंभ कर दिया था। इस नीति के पीछे अंग्रेजों का उद्देश्य था कि वे अपने देश की आवश्यकता के मुताबिक कृषि उत्पादों का अधिकाधिक उत्पादन करा के उसे भारत से ब्रिटेन निर्यात कर सके।

जंगलों में रहने वाले भारत के मूलनिवासी इसे अपने आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप और शोषण के रूप में देख रहे थे, जबकि तथाकथित सभ्य अंग्रेज भारत के सभी वनवासियों को क्रूर, असभ्य, उग्र, बर्बर एवं असामाजिक मानते थे। जिन्हें स्थाई रूप से बसाकर उन्हें सभ्य एवं पालतू बनाया जाना प्रस्तावित था, क्योंकि असभ्यों को सभ्य बनाने का भार मानो गोरी चमड़ी को उनके ईश्वर ने ठेके पर उपलब्ध कराया था।

1757 ई. की प्लासी की लड़ाई में औपनिवेशिक फिरंगी सत्ता की स्थापना की नींव पड़ने से लेकर 15 अगस्त 1947 ई. तक के काल का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है, कि इस पूरे कालखंड के दौरान भारतीय किसी न किसी कारण से अंग्रेजों की सत्ता को सदैव चुनौती प्रस्तुत करते रहे हैं। चाहे वह 1770 के दशक का सन्यासी विद्रोह हो या फिर 18 फरवरी, 1946 का शाही नौसेना का विद्रोह अर्थात 190 वर्षो की गुलामी के दौर में भारतीय आजादी की लड़ाई में अपने–अपने क्षेत्रों एवं समुदायों के हितों की रक्षा हेतु लड़े और हारे भी किंतु उन्होंने अपना कभी हौसला नहीं खोया और ना ही वे लड़ने से कभी पीछे हटे।

यहां एक और तथ्य पर विहंगम दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि अंग्रेजों से भारत का कोई ना कोई वर्ग सदैव लड़ा और हारा किंतु उसने पीछे मुड़कर यह देखने की कोशिश नहीं की, कि आखिर चंद अंग्रेज इतने विशाल देश को गुलाम कैसे बनाए हुए हैं? यह एक यक्ष प्रश्न है! किंतु इसका सामान्य उत्तर है कि हमने अंग्रेजों का प्रतिरोध एक देश के रूप में नहीं, बल्कि एक धर्म, जाति, वर्ग या क्षेत्र के रूप में सदैव किया है, तभी तो जब मराठे लड़ रहे थे तो सिख शांत थे, जब बुंदेला लड़ रहे थे तो गोंड उदासीन थे। हमारे देश का किसान, मजदूर, राजा, प्रजा, शिल्पी, व्यापारी, जागीरदार, संन्यासी, मुंडा, संथाल, भील, हो, अहोम, कोल और भी अनेक आदिवासी समुदाय अकेले लड़ते रहे और दूसरा केवल तमाशबीन बनकर अपने शोषण की इंतहा होने का इंतजार करता रहा और जब उसके शोषण की इंतहा हो गई तो वह लड़ा और फिर दूसरा तमाशबीन की भूमिका में आ गया। आखिरकार जब गांधी जी ने संपूर्ण देश को एकता के सूत्र में पिरोया तो फिर अंग्रेजों को देश से बाहर जाने के अलावा अन्य कोई विकल्प नजर नहीं आया।

भारत में अंग्रेजों ने अपनी राजनीतिक सत्ता की स्थापना हेतु विजयी यात्रा, 1757 ई. में प्लासी के युद्ध के साथ ही प्रारंभ कर दी थी, और उपनिवेशवादी व साम्राज्यवादी अश्वमेधी यज्ञ के अश्व को रोकने का जन जागरण तथा आक्रोश 1857 ई. की क्रांति के रूप में उभर कर सामने आया था, इसकी प्रकृति को लेकर इतिहासकारों में हमेशा ही मतभेद रहे हैं, और कुछ इतिहासकारों

ने तो इसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम तक की संज्ञा भी दी है। जबकि वास्तव में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व ही, बुंदेलखंड में 1842 में बुंदेला विद्रोह और 1855–56 ई. में संथाल विद्रोह हुआ था। संथाल विद्रोह का जिस प्रकार से संगठन किया गया था, वास्तव में उसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम स्वीकार करना चाहिए। यदि संपूर्ण भारत ने संथालों का साथ दिया होता तो 1855–57 के मध्य का इतिहास ही अलग होता।

यहां यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि भारत के जन सामान्य व प्रबुद्ध वर्ग की लड़ाई केवल और केवल अंग्रेजों से थी, जबकि इस देश के आदिवासियों या जनजातियों के लिए यह लड़ाई तिहरी थी अर्थात उन्हें अंग्रेजों से तो लड़ना ही था, साथ ही अंग्रेजों के द्वारा तैयार किए गए अभिकरणों या मशीनरी तंत्र जैसे की जमीदारों, साहूकारों, महाजनों, लगान वसूल करने वाले बिचौलियों, के साथ ही अधिकारियों, पुलिस, तहसीलदार आदि से भी थी। अंग्रेजों का तथाकथित वफादार, चापलूस और चमचागिरी करने वाला यह अभिकरण रंग–रूप में तो भारतीय था, किंतु आचरण, लालच और शोषण में अंग्रेजों से कम नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्यवादी हुकूमत के अधिक से अधिक करीब होने के दिखावे के लिए यह वर्ग अपने ही देश के आदिवासियों पर अमानवीय व्यवहार करता था, उनका आर्थिक और शारीरिक शोषण करता था तथा बेगार करवाता था।

जनजातीय आंदोलन या संघर्ष तिहरा था, इनका सर्वप्रथम विरोध किसी भी बाहरी तत्व के इनके अपने क्षेत्र में प्रवेश से था, चूँकि सर्वप्रथम अंग्रेजों ने एक स्थाई समाज के निर्माण, राजस्व में अधिकाधिक वृद्धि और अपने देश को निर्यात किए जाने वाले उत्पादों के उत्पादन में वृद्धि के लिए कृषि–भूमि का विस्तार किया और कृषि–भूमि जैसे–जैसे बढ़ी, वैसे–वैसे ही आदिवासियों की आजादी छिनती गई और उनकी परंपरागत एकाधिकार वाली जमीनें भी जाती रहीं।

एक प्रकार से जंगलों पर उनकी निर्भरता अत्यधिक थी वे जंगलों से ही जलाऊ लकड़ी प्राप्त करते थे, वहां से प्राप्त लकड़ी से मकान बनाते थे, उससे फल–फूल, रेशम का कोया, राल तथा काठकोयला बनाने के लिए लकड़ी और महुआ के फूल संग्रहीत करते थे, शिकार करके भोजन प्राप्त करते थे। अपने जानवरों के लिए वे यहीं से चारा भी प्राप्त करते थे। सामान्यतः भारत में सभी आदिवासियों की भांति पहाड़िया भी अपनी झोपड़ियां इमली के पेड़ों के बीच में बनाकर आम की अमराई में विश्राम करते थे। आदिवासियों में सामान्य परंपरा यही थी कि वे अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को जंगल से प्राप्त नहीं करते थे, क्योंकि वे प्रकृति को अपनी देवी और अपना संरक्षक समझते थे, जबकि लालची ब्रिटिश सरकार, साहूकार और महाजन जंगलों को बेतहाशा काट कर अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहते थे जिसका आदिवासियों के द्वारा विरोध किया जाना स्वाभाविक था।

भारत में नव स्थापित ब्रिटिश साम्राज्य जंगलों में अपना विस्तार कर रहा था या यूं कहें कि अंग्रेजों की यह नीति थी **'फूट डालो, राज करो और विस्तार करो'।** प्लासी के युद्ध के बाद से ही भारत में अंग्रेजों के द्वारा विभिन्न प्रकार की भू–राजस्व वसूल करने की पद्धतियों का क्रियान्वयन किया गया था। सर्वप्रथम लार्ड कार्नवालिस के द्वारा बंगाल में स्थाई बंदोबस्त प्रारंभ किया गया, जिसके अंतर्गत जमीदारों के साथ अनुबंध किया गया था। इस व्यवस्था में जमींदारों ने अपनी शान और हेकड़ी को बचाने के लिए ऊंची–ऊंची बोलियां लगाकर जागीर तो प्राप्त कर लीं, किंतु जब उनसे पर्याप्त भू–राजस्व वसूल नहीं हो सका, तो अंग्रेजों की मदद से जंगली जमीन की तरफ कृषि भूमि का विस्तार करना प्रारंभ किया, जहां पहले से ही आदिवासियों का एकाधिकार था और वे इसका सदियों से उपयोग करते आ रहे थे। वहीं जमीदारों ने कृषकों से अधिक से अधिक भू–राजस्व वसूल करने के लिए दबाव डाला। परिणामस्वरूप आदिवासियों को अपनी जमीनों को बचाने के लिए और भू–राजस्व चुकाने हेतु साहूकारों या महाजनों से ऋण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा।

आदिवासी समाज के लोग अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने आस–पास और पड़ोस के साहूकारों से कर्ज लेते थे। लालची साहूकार अपने बही–खातों में इन आदिवासियों से अंगूठा लगवा लेते थे और बाद में मनमानी रकम लिख लेते थे, जिसका आदिवासियों को ज्ञान ही नहीं था, क्योंकि आदिवासी समाज अभी भी अपने लेनदेन को रस्सी में गांठ बांधकर याद रखते था। जब आदिवासियों ने इन साहूकारों और जमीदारों के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार के कर्मचारियों और अधिकारियों से शिकायत की तब इन औपनिवेशिक अधिकारियों ने आदिवासियों की बजाय साहूकारों

और जमीदारों का ही साथ दिया, परिणामस्वरूप आदिवासियों को इन तीनों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए विवश होना पड़ा।

ऐसा ही एक मामला है वर्तमान झारखंड की राजमहल पहाड़ी क्षेत्र का, जोकि संथाल परगना के उत्तर और भागलपुर तथा मुंगेर के दक्षिणी क्षेत्रों में विस्तृत था, जिसे जंगलतरी अथवा जंगल तराई कहा जाता था। जहां पहले पहाड़िया लोग रहते थे, वे जंगल पर पूरी तरह से अपने आर्थिक और दैनिक जीवन के लिए निर्भर थे, वे एकांतवासी थे और अपने क्षेत्र में किसी के प्रवेश को अपनी सुरक्षा के विरुद्ध मानते थे।

आदिवासियों का अपना स्वयं का कानून होता था। वे स्थानांतरित या झूम खेती करते थे अर्थात खेती में हल चलाना उनकी परंपरा में पाप समझा जाता था। अतः वे भूमि पर उग आई घास–फूस और कटीली झाड़ियों में आग लगाकर उसकी राख की पोटाश में कुछ समय तक खेती करते थे, और जब उसकी उर्वरता क्षीण हो जाती थी, तो वे दूसरे स्थान पर स्थानांतरित हो जाते थे। उनकी परंपरा में यह माना जाता था कि यह जंगल, जानवर और जमीन प्रकृति द्वारा उन्हें प्रदान की गई है, अतः इसका उपभोग करना उनका एकाधिकार है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजमहल पहाड़ी और उसका आसपास का क्षेत्र अशांति और अराजकता का क्षेत्र बन चुका था। पहाड़िया लोगों के द्वारा अपने आस–पास के कृषि करने वाले किसानों पर समय– समय पर आक्रमण किए जाते थे। यह आक्रमण दो कारणों से किए जाते थे– एक अपनी आवश्यकता की वस्तुएं प्राप्त करने के लिए और दूसरा अपनी शक्ति को प्रदर्शित करने के लिए। पहाड़िया लोगों के आसपास से गुजरने वाले व्यापारियों को भी इन पहाड़िया जनजाति के सरदारों से अपनी सुरक्षा के बदले अच्छी खासी रकम चुकानी पड़ती थी। यहां तक कि जमींदार भी अपनी सुरक्षा के लिए चौथ जैसा सुरक्षा कर देकर शांति स्थापित करते थे।

राजमहल पहाड़ियों के मूल बाशिंदे– पहाड़ियों ने अंग्रेजों की नीति और निर्देश के अनुसार ना तो कृषि विस्तार हेतु जंगलों की कटाई की और ना ही स्थाई निवास बनाने को तैयार हुए, तभी अंग्रेजों ने फूट डालो और राज करो की नीति का षड़यंत्र करके संथालों को 1780 के दशक में राजमहल की पहाड़ियों में बसाना प्रारंभ किया, जिसमें उन्हें अंग्रेजों के साथ–साथ जागीरदारों का भी सहयोग प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप अंग्रेजों और जमींदारों का साथ पाकर संथालों ने पहाड़िया आदिवासियों को उनके मूल निवास स्थान से खदेड़ दिया, इस प्रकार पहाड़ियां आदिवासियों को अंग्रेजों के साथ–साथ संथालों के आक्रामक रवैय्ये का भी सामना करना पड़ा। कार्नवालिस द्वारा लागू किए गए स्थाई बंदोबस्त के कारण जमींदार भू–राजस्व वसूल करने के लिए कृषि भूमि का अधिक से अधिक विस्तार करना चाहते थे, जिसमें उन्हें संथालों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ और उन्होंने परती और जंगली जमीन को दिन–रात मेहनत करके लहलहाते खेतों में बदल दिया।

संथाल, पहाड़िया आदिवासियों के विपरीत जंगलों को काटने में संकोच नहीं करते थे, पहाड़िया जहां केवल झूम खेती के द्वारा कुदाल से खेती करना पसंद करते थे, वहीं संथाल हल–बैल से खेती करने वाले उन्नत कृषक थे। संथालों ने राजमहल की पहाड़ियों में बसने से पहले, स्थाई जीवन के लिए अनेक स्थानों की लंबी–लंबी यात्राएं की थी और इस स्थान पर आकर उनकी यात्रा को विराम लगा था। जिसका उल्लेख उनके लोकगीतों और किवदंतियों से भी प्राप्त होता है।

अंग्रेजों ने संस्थालों को जमीने इस शर्त के साथ दी थी कि वह उसके कम से कम दसवें हिस्से को, 10 वर्षों के अंदर कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित कर देंगे। अंग्रेजों ने संथालों के लिए बाड़ाबंदी कर दी थी, इस क्षेत्र को पहाड़िया लोगों से और मैदानी क्षेत्रों के स्थाई कृषकों की दुनिया से अलग–थलग रखा गया था, जिसे **दामिन–ए–कोह (पहाड़ का आंचल)** के नाम से जाना जाता था। इस क्षेत्र को संथालों का क्षेत्र भी माना गया था और यहां के संसाधनों पर संथालों के स्वामित्व को स्वीकार कर लिया गया था। संस्थालों ने अपने खून पसीने से इस क्षेत्र को हरा–भरा और कृषि के लिए आदर्श बना दिया।

1810 ई. में जब बुकानन ने राज महल के गंजुरिया गांव के आसपास के क्षेत्र को देखा, और लिखा कि इस गांव को अभी हाल ही में खेती के योग्य बनाया गया है, और इसकी सुंदरता तथा उत्पादकता विश्व के किसी भी क्षेत्र से अधिक विकसित नजर आ रही है। संथालों की कड़ी मेहनत का परिणाम यह निकला कि जहां 1838 ई. में केवल 40 गांव संथालों के थे, वहीं 1851 ई. में बढ़कर 1473 हो गए और जनसंख्या जहां 1838 ई. में 3000 थी, वहीं 1851 ई. में 82000 से भी

अधिक हो गई, इतना ही नहीं जहां अंग्रेजों को 1836–37 ई. में इस क्षेत्र से भू–राजस्व मात्र ₹2611 प्राप्त होता था, वहीं वह 1854–55 ई. में बढ़कर ₹58033 हो गया। संथालों ने अपने खून–पसीने से ना केवल कृषि योग्य भूमि का विस्तार किया, बल्कि ब्रिटेन की घरेलू मांग और भारत से निर्यात की जाने वाली नकदी फसलों का उत्पादन भी अधिकाधिक किया।

ब्रिटिश सरकार ने जब देखा कि संथाल हर प्रकार से खुशहाल हो गए हैं और अधिकाधिक उत्पादन करने लगे हैं, तो उन्होंने वहां पर, जमीदारी व्यवस्थाएं लागू करनी प्रारंभ कर दीं और भू–राजस्व वसूल करने के लिए जमीदारों और भू–राजस्व अधिकारियों व कर्मचारियों की तैनाती कर दी, इसके साथ ही इस क्षेत्र में साहूकारों और महाजनों का भी प्रभाव बढ़ने लगा। जबकि संथाल इन सभी वर्गों को दिकू या बाहरी व्यक्ति मानते थे। उक्त औपनिवेशिक सरकार के अभिकरणों ने भोले–भाले संथालों का सभी प्रकार से शोषण किया। उनसे मनमाना भू–राजस्व वसूल किया, कर्ज की राशि में 50 से 500 फीसदी तक ब्याज वसूल किया, जिससे संथालों की आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन खराब होती चली गई। साहूकार विभिन्न चालें चलकर संथालों की जमीन, जायदाद, मकान, मवेशी हड़प लेते थे। उक्त सभी प्रकार का शोषण बिना अंग्रेजों के सहयोग और संरक्षण के संभव नहीं था। अतः संथालों में आक्रोश पनपना स्वाभाविक था।

यद्यपि विद्रोह के लिए बारूद का पीपा तैयार था, उसमें एक चिंगारी का कार्य किया, पूर्वी भारत में रेलवे लाइन के निर्माण कार्य ने, जब मजदूरी करने के लिए संथाल वहां गए, तब वहां के ठेकेदारों और अधिकारियों द्वारा ना केवल उनका आर्थिक शोषण किया गया बल्कि उनकी बहू बेटियों का शारीरिक शोषण भी किया गया।

स्थाई बंदोबस्त के अंतर्गत भू–राजस्व वसूल करने वाले कर्मचारियों, पुलिस अधिकारियों, जमीदारों और साहूकारों द्वारा संस्थालों का अत्यधिक शोषण किया गया। संथालों ने भू–राजस्व चुकाने के लिए साहूकारों से ऋण लिया, उस पर साहूकारों ने मनमाना ब्याज वसूल किया, ब्याज ना चुकाने की स्थिति में संथालों को उनकी जमीनों से बेदखल कर दिया जाता था।

उपरोक्त सभी प्रकार के शोषणों की जब अति हो गई, तो 1855 ई. में चुन्नू मांझी के चारों बेटों–सिद्धू, कान्हू, चांद और भैरव ने संथालों को एकजुट होकर इस अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए संगठित किया। जैसा कि सामान्यतः होता है कि धर्म के नाम पर लोगों को एकजुट किया जाना ज्यादा आसान होता है, परिणामस्वरूप सिद्धू ने भी यही किया और उसने अपने आप को दैवीय पुरुष घोषित किया तथा संथालों के प्रमुख देवता ठाकुर जी का अवतार भी अपने आप को घोषित कर दिया।

30 जून 1855 ई. को संथालों की, वर्तमान झारखंड के साहिबगंज जिले के भोगनाडीह गांव में बैठक आयोजित की गई जिसमें संथालों के 400 से अधिक गांवों तथा 10,000 से अधिक संथाल आदिवासी एकत्रित हुए। बैठक में सिद्धू को राजा, कान्हू को मंत्री और भैरव को सेनापति बनाया गया था। संथालों ने नारा दिया था '**करो या मरो अंग्रेजों हमारी माटी छोड़ो**'।

जहां सिद्धू ने ठाकुर जी का आदेश सुनाया, कि आज से संथालों को ना तो सरकारी आदेश का पालन करना है, ना उन्हें लगान देना है, और आज से अंग्रेजी शासन को समाप्त करके स्वयं का राज्य स्थापित करना है। सिद्धू ने कहा कि इन अत्याचारी तथा उत्पीड़नकारी अंग्रेजों के विरुद्ध ठाकुर जी स्वयं हमारे पक्ष में युद्ध करेंगे। संथालों के मध्य एक अफवाह भी आग की तरह फैल रही थी, कि बोंगा जिनके हाथों में बीस अंगुलियां थीं, ने बताया है कि 'जुमींदार, महाजोन, पुलिस आर राजेरन अमलो को गुजुकमा' अर्थात जमींदार, पुलिस राजकीय अमले और सूदखोरों का नाश होगा। उक्त संदेशों को डुग–डुगी पिटवाकर और साल की टहनी देकर गांव–गांव तक पहुंचाया गया, साथ ही लोगों को विद्रोह के लिए, तैयार रहने को कहा गया। यद्यपि प्रारंभ में संथालों ने जमीदारों और साहूकारों को ही निशाना बनाया था और वे अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं थे, किंतु जैसे ही अंग्रेजों ने संथालों के नेताओं को पकड़ने का आदेश दिया, संथाल अंग्रेजों के भी विरुद्ध हो गए। जब चारों भाइयों को पुलिस दरोगा गिरफ्तार करने के लिए पहुंचा, तो गुस्साए संथालों ने उसकी हत्या कर दी। संथाल उग्र हो गए, उन्होंने सरकारी मशीनरी या अभिकरण–जमींदारों, महाजनों सरकारी कार्यालयों, कर्मचारियों, को नष्ट करना प्रारंभ कर दिया। विद्रोहियों ने दरोगा महेश लाल और प्रताप नारायण की भी हत्या कर दी। पुलिस थाने जलाए गए, तहसीलों पर कब्जा कर लिया गया, दुकानें लूट ली गईं, साहूकारों के बही–खाते, जिनमें उनके शोषण करने

वाले फर्जी कर्ज लिखे हुए थे, को जलाकर राख कर दिया गया, और वे सभी अभिकरण उनके निशाने पर आ गए जिन्हें वे अपने शोषण का कारण मानते थे। संथालों ने भागलपुर और राज महल के बीच रेल, डाक और तार सेवा को भी नष्ट कर दिया। विद्रोहियों ने चार्ल्स मासेक की कदमसीर में बनी नील कोठी और महेशपुर के राज महल को भी निशाना बनाया। यद्यपि यह आंदोलन अपनी जमीनों को हड़पने से बचाने के लिए प्रारंभ हुआ था, किंतु इसने बाद में राजनीतिक रूप धारण कर लिया जैसा की आर. सी. मजूमदार ने लिखा है कि ''संथाल विद्रोह आर्थिक कारणों से उत्पन्न हुआ था, लेकिन शीघ्र ही इसका उद्देश्य विदेशी शासन को समाप्त करना हो गया।''

संथालों की इन उग्र गतिविधियों से अंग्रेजों में भय व्याप्त हो गया। सरकार ने विद्रोहियों को कुचलने के लिए अंग्रेजी सेना का नेतृत्व जनरल लॉयर्ड को सौंपा था। उसने सभी मानवीय मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुए कोलकाता और पूर्णिया से सैनिक टुकड़ियों को बुलाकर संथालों का क्रूरतापूर्वक संहार संथालों के हमलों से बचने के लिए अंग्रेजों ने पाकुड़ में मार्टिलो टावर का निर्माण कराया था, जो आज भी वहां पर स्थित है, आधुनिक हथियारों से सुसज्जित अंग्रेजी सेना का सामना किया किंतु अंततः 60,000 से अधिक संथाल मारे गए। संथाल विद्रोहियों के केंद्र भोगनाडीह को पुलिस ने जला दिया, और एक अन्य केंद्र बड़हैत पर सेना ने कब्जा करके चांद और भैरव की हत्या कर दी। सिंद्धु को पकड़कर पंचकठिया नामक जगह पर बरगद के पेड़ पर सार्वजनिक रूप से फांसी दे दी गई थी, वह पेड़ आज भी पंचकठिया में संथालों की शहादत को चिरस्थाई बनाए हुए है। जिसे शहीद स्थल भी कहा जाता है। संथालों के इस संघर्ष ने अंग्रेजी हुकूमत की नींद उड़ा दी थी। और कान्हू पकड़ा गया और उसे सार्वजनिक तौर पर बड़हैत में ही बरगद के वृक्ष के नीचे फांसी दे दी गई। कार्ल मार्क्स ने इस विद्रोह को भारत का प्रथम जनक्रांति कहा था।

संथालों के गांव के गांव जला दिए गए। फरवरी 1856 ई. तक लगभग सरकार ने विद्रोह को बर्बरतापूर्वक कुचल दिया। सरकार की इस कार्यवाही से तत्कालीन पुलिस जवान भी शर्मिंदा थे, किंतु औपनिवेशिक सरकार का अमानवीय चेहरा लंदन में प्रदर्शित चित्रों के माध्यम से भी उजागर हो रहा था, जहां ब्रिटिश सरकार यह दिखाने की कोशिश कर रही थी कि, उसने असभ्य, बर्बर संथालों को कुचल कर अपनी अजेयता को बरकरार रखा है।

सरकार ने संथालों के इन घावों पर मरहम लगाने के उद्देश्य भागलपुर और बीरभूम जिलों की 5500 वर्गमील भूमि को लेकर संथाल परगाना नामक नवीन प्रशासनिक इकाई बना दी और यहां अनेक नए नियम और कानून भी बनाए गए। किंतु संथालों का असंतोष कम नहीं हुआ और संथाल परगाना में 1870–80 के दशक में खेरवाड़ आंदोलन के रूप में सामने आया।

संदर्भ ग्रंथ

(1)डॉ कामेश्वर प्रसाद(2016), भारत का इतिहास, भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स पटना

(2) प्रोफेसर, विपिन चंद्र(1995), भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

(3) ग्रोवर बी एल और यशपाल(1994), आधुनिक भारत का इतिहास, एक नवीन मूल्यांकन, एस चन्द एंड कंपनी लि. रामनगर नई दिल्ली

(4) शर्मा, एल.पी. (14वां संस्करण), आधुनिक भारत का इतिहास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा–3

(5) पांडे एस. के.(2014) आधुनिक भारत का इतिहास, प्रयाग एकेडमी पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद

(6)http://prasannachoudhary.blogspot.com/2011/06/blog-post_29.html?m=1

(7)https://web.archive.org/web/20130918034400/http://www.ignca.nic.in/coilnet/jk030.htm

(8)https://web.archive.org/web/20131213065007/http://www.pravasiduniya.com/sidhu-kanha-against-the-british-who-first-blew-the-bugle